गुणीभूतव्यङ्ग्य-काव्य

गुणीभूतव्यङ्ग्य कहने से स्पष्ट हो जाता है कि इस काव्य में व्यङ्ग्यार्थ गुणीभूत अर्थात् अप्रधान होता है। आचार्य मम्मट ने इसे मध्यम काव्य की सञ्ज्ञा प्रदान की है। उन्होंने लिखा है कि जहाँ व्यङ्ग्यार्थ वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारी न हो तो वहाँ गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य होता है।[1] व्यङ्ग्य अर्थ यहाँ अस्फुटतर व्यङ्ग्य से व्यतिरिक्त होना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि अस्फुटतर व्यङ्ग्य से भिन्न व्यङ्ग्य अर्थ होना चाहिए। परन्तु वह व्यङ्ग्य, वाच्य से अधिक सुन्दर अथवा चमत्कारपूर्ण न हो। आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में बतलाया है कि जहाँ व्यङ्ग्यार्थ की सुन्दरता मन्द हो वहाँ ध्वनिकाव्य न होकर गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य होता है-

यत्र प्रतीयमानोऽर्थः प्रम्लिष्टत्वेन भासते।

वाच्यस्याङ्गतया वाऽपि नास्यासौ गोचरो ध्वनेः।।[2]

अचमत्कारिता ही गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य का मूल है। वाच्य की अपेक्षा व्यङ्ग्य का गुणीभाव चमत्कारराहित्य से ही होता है-

वाच्यापेक्षया अचमत्कारकारित्वेन व्यङ्ग्यस्य गुणीभावः।[3]

ध्वन्यालोक में स्पष्टतया गुणीभूतव्यङ्ग्य को काव्य का एक भेद स्वीकार किया गया है तथा इस स्थल पर व्यङ्ग्य वाच्य का उपस्कारक

---

१ अतादृशि गुणीभूतव्यङ्ग्यं व्यङ्ग्ये तु मध्यमम्।

(काव्यप्रकाश-प्रथमोल्लास, पृ. ३१)

२ ध्वन्यालोक २/३२

३ काव्यप्रदीप, पृ. १३३

कहकर व्यङ्ग्यार्थ की अप्रधानता और वाच्यार्थ के चारुत्व का प्रकार बतलाया गया है-

प्रकारोऽन्यो गुणीभूतव्यङ्ग्यः काव्यस्य दृश्यते।
यत्र व्यङ्ग्यान्वये वाच्यचारुत्वं स्यात्प्रकर्षवत् ।।[1]

अलङ्कारसार में गुणीभूतव्यङ्ग्य अथवा मध्यम काव्य का लक्षण प्रथमोल्लास में बतलाया गया है-

यद्वाच्याचमत्कारिव्यङ्ग्यं तद् गुणीभूतव्यङ्ग्यं मध्यमञ्च।[2]

श्रीबालकृष्णभट्ट ने यहाँ भी वाच्य से व्यङ्ग्य का चमत्काररहित्य स्वीकार किया है। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थों में भी गुणीभूतव्यङ्ग्य का लक्षण उपर्युक्त कथनों के अनुसार ही है। काव्यशास्त्र के सभी ग्रन्थों में मध्यमकाव्य अथवा गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य का पल्लवन मम्मटादि के अनुसार ही किया गया है। अतः इन सबका पिष्टपेषण यहाँ आवश्यक नहीं है।

गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य का उत्कृष्टत्व

ध्वनिकाव्य की रमणीयता तो सर्वप्रसिद्ध है। परन्तु मध्यम काव्य भी उत्कृष्ट है। **ध्वन्यालोक** के रचयिता आनन्दवर्धन ने लिखा है कि सुबुद्धिमान् कवि को जहाँ उत्तम काव्य ध्वनि का प्रयोग करना चाहिए वहीं गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य से सम्पृक्त रचना का उपयोग स्वकीय काव्य में करना औचित्यपूर्ण है।[3] सूक्ष्मतया अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य का महत्त्व ध्वनिकाव्य से न्यून नहीं है। इसीलिए काव्य की इस विधा का प्रयोग प्रायः सभी काव्यों में देखा जाता है। अलङ्कार, विशेषतया अर्थालङ्कार काव्य में अवश्य रहते हैं।

---

१ ध्वन्यालोक ३/३५
२ अलङ्कारसार, प्रथमोल्लास, पृ. ५
३ ध्वन्यालोक, ४/५

अर्थालङ्कारों में चमत्कार का आधान गुणीभूतव्यङ्ग्य के द्वारा होता है अतः अलङ्कार प्रधान काव्यों में गुणीभूतव्यङ्ग्य ही प्राणतत्त्व है इसीलिए **ध्वन्यालोक** में कहा गया है-

तदेवं व्यङ्ग्यांशसंस्पर्शे सति चारुत्वातिशययोगिनो रूपकादयोऽलङ्कारा सर्व एव गुणीभूतव्यङ्ग्यस्य मार्गः। गुणीभूतव्यङ्ग्यत्वं च तेषां तथा जातीयानां सर्वेषामेवोक्तानुक्तानां सामान्यम् ।

वास्तविक रूपेण यदि अवलोकन किया जाय तो गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य में व्यञ्जना की भूमिका विशेषतया रहती है। इसमें व्यङ्ग्यार्थ वाच्यार्थ का कभी-कभी परमोपस्कारक बन जाता है। रसादिध्वनि भी किसी के अङ्गभूत होने पर गुणीभूतव्यङ्ग्यरूप रसवदादि अलङ्कारों की सृष्टि करती है-

रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमस्तथा।
गुणीभूतत्वमायान्ति यदालङ्कृतयस्तदा।।
रसवत्प्रेय ऊर्जस्वि समाहितमिति क्रमात् ।
भावस्य चोदये सन्धौ मिश्रत्वे च तदाख्यकाः।।[2]

जब रस दूसरे के अङ्ग होते हैं तो उसे रसवत् , भाव के अङ्ग होने पर प्रेय, रसाभास और भावाभास के अङ्ग होने पर ऊर्जस्वी तथा भावशान्ति के अङ्ग होने पर समाहित अलङ्कार होते हैं। भावोदय भावसन्धि तथा भावशबलता के अङ्ग होने पर इन्हीं के नामों वाले भावोदय आदि अलङ्कार होते हैं।

इस प्रकार यह सब गुणीभूतव्यङ्ग्य का ही क्षेत्र है। कभी-कभी सहृदयजन गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य का सूक्ष्म पर्यालोचन करने पर अनु

---

१. ध्वन्यालोक, तृतीयोद्योत, पृ० २६२
२. साहित्यदर्पण १०/[illegible]

होते हैं कि इसका पर्यवसान ध्वनि काव्य में ही हो रहा है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने इसी का समुल्लेख अधोलिखित कारिका में किया है-

प्रकारोऽयं गुणीभूतव्यङ्ग्योऽपि ध्वनिरुच्यताम् ।
यत्ते रसादितात्पर्यपर्यालोचनया पुनः।।[1]

वास्तव में चमत्कार ही काव्य का प्राण है यदि वह सहृदयों को वाच्य में आह्लादित करता है और व्यङ्ग्यार्थ उसका पोषक बनता है तो वह काव्य गुणीभूतव्यङ्ग्य तथा यदि व्यङ्ग्य में चमत्कारातिशय की अनुभूति होती है तो उसे ध्वनिकाव्य की संज्ञा दी जाती है। काव्य के उत्तम-मध्यम का विभाजन आनन्दवर्धन ने नहीं किया है यह परवर्ती आचार्य मम्मट के द्वारा विहित है। अतः ध्वनि तथा गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्यों का काव्य में रचना की दृष्टि से समान महत्व स्वीकार किया जा सकता है। गुणीभूतव्यङ्ग्य के बिना काव्य के अधिकांश भाग तथा काव्य के शोभाधायक अधिकांश तत्वों की सत्ता का निर्मूल होना निश्चित है। अतः गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य का अपना विशिष्ट महत्व काव्य रचना के क्षेत्र में अपरिहार्य है।

गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य के भेद

आनन्दवर्धनाचार्य ने गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य की पर्याप्त चर्चा की है और स्थान-स्थान पर इसके अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है, परन्तु सङ्कलित रूपेण कहीं भी **ध्वन्यालोक** में गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य के भेदों का नाम नहीं दिया गया है। परवर्ती आचार्य मम्मट ने गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य के भेदों का सङ्कलन करके कारिकाबद्ध किया है-

अगूढमपरस्याङ्गं वाच्यसिद्ध्यङ्गमस्फुटम् ।
संदिग्धतुल्यप्राधान्ये काक्वाक्षिप्तमसुन्दरम् ।।
व्यङ्ग्येतरं गुणीभूतव्यङ्ग्यस्याष्टौ भिदाः स्मृताः।।[2]

---

१ ध्वन्यालोक, पृ. ३/४१

२ काव्यप्रकाश, पञ्चमोल्लास, पृ. २३८

गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य के ये आठ भेद मम्मटाचार्य ने किये हैं

(१) अगूढ

(२) अपराङ्ग

(३) वाच्यसिद्ध्यङ्ग

(४) अस्फुट

(५) सन्दिग्धप्राधान्य

(६) तुल्यप्राधान्य

(७) काक्वाक्षिप्त

(८) असुन्दर

वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट के परवर्ती प्रायः सभी आचार्य गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य के उपर्युक्त यही आठ प्रकार स्वीकार करते हैं। **साहित्यदर्पण**,[1] **चन्द्रालोक**,[2] **साहित्यसुधासिन्धु**[3] तथा **अलङ्कारकौस्तुभ**[4] में इस काव्य के उपर्युक्त आठ प्रकार बतलाये गये हैं। बालकृष्ण भट्टाचार्य ने मम्मट के मत का खण्डन किया है और गुणीभूतव्यङ्ग्य के तीन ही भेद अङ्गीकार किये हैं- (१) **व्यङ्ग्याप्राधान्य** (२) **सन्दिग्धप्राधान्य** (३) **तुल्यप्राधान्य**।[5] आधुनिक आचार्यों ने

---

1 साहित्यदर्पण १०/१३-१४

2 चन्द्रालोक ६/१-१०

3 साहित्यसुधासिन्धु ४/७६-७७

4 [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] गुणीभूतव्यङ्ग्यस्य भेदा अष्टु॥

5 [illegible] (अलङ्कारकौस्तुभ [illegible])

श्रीकृष्णकवि,[1] अच्युतराय[2] तथा रामदहिनमिश्रप्रभृति[3] गुणीभूतव्यङ्ग्य के आठ भेद मानते हैं। **नञ्जराजयशोभूषण** में गुणीभूतव्यङ्ग्य के सात प्रकार बतलाये गये हैं।[4] **काव्यालोक** में गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य के आठ भेद कहे गये हैं:

अगूढापरवाच्याङ्गाऽस्फुटाङ्गाऽसुन्दराः क्रमात्।
सन्दिग्धतुल्यप्राधान्ये काक्वाक्षिप्तं ध्वनेः क्रमः॥[5]

श्रीवत्सलाञ्छनभट्ट ने **अलङ्कारसार** में भी उपर्युक्त आचार्यों के मत का अभिनिवेश करते हुए गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य के आठ प्रकार बतलाये हैं:

(१) अगूढ (२) अपराङ्ग (३) वाच्यसिद्ध्यङ्ग (४) अस्फुट (५) सन्दिग्धप्राधान्य (६) तुल्यप्राधान्य (७) काक्वाक्षिप्त (८) असुन्दर।[6]

अलङ्कारसार में इन उपर्युक्त आठ प्रकार के गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्यों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्यों के अष्ट प्रकारों का विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

१. अगूढ गुणीभूतव्यङ्ग्य : जो व्यङ्ग्य गूढ न होकर अगूढ अर्थात् सर्वजनसंवेद्य हो उसे अगूढ गुणीभूतव्यङ्ग्य कहते हैं। आशय यह है कि गूढव्यङ्ग्य तो सदैव सहृदयजनसंवेद्य होता है और इसे

---

१ मन्दारमरन्दचम्पू, पृ. १५७
२ साहित्यसार, पृ. ११५
३ काव्यदर्पण, पृ. २८८-२८९
४ स च सप्तधा। अपराङ्गत्वेन, अगूढत्वेन, अस्फुटत्वेन, वाच्यसिद्ध्यङ्गत्वेन, (वा काक्वा) व्यङ्ग्यव्यङ्ग्यकयोः प्राधान्यसन्देहेन तौल्येन असुन्दरत्वेन। (नञ्जराजयशोभूषण, पृ. ३२)
५ काव्यालोक, पृ. १३२
६ अगूढमपरस्याङ्गं वाच्यसिद्ध्यङ्गमस्फुटम्। सन्दिग्धतुल्यप्राधान्ये काक्वाक्षिप्तमसुन्दरम्॥ (अलङ्कारसार ५/१)

द्वारा बोझिल न होने वाले स्फुटरस की अभिव्यञ्जना करने वाले पदों से युक्त व्यङ्ग्यार्थात्मक ध्वनि ही कवियों को अत्यधिक आनन्द प्रदान करती है। किञ्चित् किञ्चित् मन्द वायु से हिलने वाले वस्त्र के अन्तर्गत कुछ छिपा हुआ तथा कुछ दिखता हुआ कुचयुगल जैसी कान्ति बिखेरता है, वैसी कान्ति (शोभातिरेक) उद्घाटित वक्षःस्थल नहीं उत्पन्न करता है-

अनुद्घृष्टः शब्दैरथ च रचनातः स्फुटरसः।
पदानामर्थात्मा जनयति कवीनां बहुमुदम् ।।
यथा किञ्चित्किञ्चित्पवनचलचेलाञ्चलतया।
कुचद्वन्द्वं कान्तिं किरति न तथोद्घाटितमुरः।।[1]

अलङ्कारसार में अगूढ गुणीभूतव्यङ्ग्य का उदाहरण भी दिया गया है।[2] इसमें अर्थशक्ति मूलानुरणनरूपव्यङ्ग्य के झटिति प्रतीत हो जाने से अगूढ गुणीभूतव्यङ्ग्य है। अर्थान्तर सङ्क्रमितवाच्य में भी गुणीभूतव्यङ्ग्यत्व इसी प्रकार हो सकता है। रस, भाव, रसाभास, भावाभास तथा भावशान्ति आदि यदि किसी दूसरे के अङ्ग रूप में प्रकाशित होते हैं तो वहाँ भी गुणीभूतव्यङ्ग्य की अगूढ स्थिति हो सकती है।[3]

आनन्दवर्धनाचार्य ने लिखा है कि जहाँ व्यङ्ग्य के द्वारा कोई महान् सौष्ठव नहीं होता है वहाँ उपचार शक्तिवृत्ति (लक्षणा) से व्यवहार किया जाता है,[4] ऐसी स्थिति में अगूढ व्यङ्ग्य की सम्भावना प्रचुरतया रहती है। अगूढ गुणीभूतव्यङ्ग्य का यहाँ सङ्क्षिप्ततया दर्शन कराया गया है।

---

१ काव्यप्रकाश-वामनझलकीकर-टीका-४/४५-४६-पादटिप्पण।
२ अलङ्कारसार, ५/६
३ तदेव, पञ्चमोल्लास, पृ० ५१
४ यत्र हि व्यङ्ग्यकृतं महत्सौष्ठवं नास्ति तत्राप्युपचरितशब्दवृत्त्या प्रसिद्ध्यनुरोधेन प्रवर्तित-व्यवहाराः कवयो दृश्यन्ते।
(ध्वन्यालोक-प्रथमोद्योत, पृ० ६१)

२. अपराङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य : व्यङ्ग्यार्थ जब वाच्य के अङ्ग के रूप में प्रकाशित होता है तो वहाँ ध्वनि न होकर गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य माना जाता है। इसे अपराङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य कहते हैं। यदि व्यङ्ग्य, किसी अन्य रस, भाव आदि अथवा वाच्य जो समस्त वाक्य के तात्पर्य के रूप मे विद्यमान होकर अङ्ग रूप में होता है तो उसे गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य का अपराङ्ग भेद कहते हैं। रस, भावादि के रूप में व्यङ्ग्य यहाँ असंलक्ष्यक्रम वाला हो सकता है अथवा वस्तु अलङ्कार के रूप में संलक्ष्यक्रम वाला हो सकता है। व्यङ्ग्य वाच्यार्थ का उपस्कारक भी होता है जैसा कि कहा है- **निरपेक्षसिद्धत्वेन वाच्यस्य यदुपोद्बलकं तदपराङ्गमिति पर्यवसितोऽर्थः।**[1] **अलङ्कारसार** में रसवदादि अलङ्कारों के उदाहरण अपराङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य के अन्तर्गत दिये गये है। अपराङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य के अन्तर्गत अधोलिखित रूपेण व्यङ्ग्यार्थ की अङ्गता का प्रतिपादन किया जा सकता है-

(क) रसवद् : विभावादि से अभिव्यक्त होने वाला रत्यादि स्थायिभाव सहृदय-चित्त गोचर होकर पुनः किसी के अङ्ग के रूप में स्थित हो तो उसे रसवदलङ्कार कहते हैं-

विभावादिव्यञ्जितो यो रत्यादिश्चित्तगोचरः।
स यत्रान्यस्य रसवदङ्गं तत्र विभूषणम् ।।[2]

इसके उदाहरण के रूप मे एक पद्य **अलङ्कारसार** में प्राप्त होता है।[3] यहाँ पर भाव का अद्भुत रस अङ्ग है। अतः अपराङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य तथा रसवदलङ्कार है। इसके अतिरिक्त महाभारत के वनपर्व का एक प्रसिद्ध श्लोक भी इसके उदाहरण के रूप में उद्धृत है

१ अलङ्कारसार, [illegible], पृ. ६२
२ [illegible], ५/५
३ मुनिर्जयति योगीन्द्रो महात्मा कुम्भसम्भवः।
येनैकचुलुके दृष्टौ दिव्यौ तौ मत्स्यकच्छपौ।। (अलङ्कारसार ५/४)

अयं स रशनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः।।[1]

युद्ध में कटे हुए भूरिश्रवा के हाथ को देखकर उसकी पत्नी कहती है कि मेरी करधनी को खींचने वाला, पीन स्तनों का विमर्दन करने वाला, नाभि, उरु तथा जघन स्थलों का स्पर्श करने वाला और नीवी को खोलने वाला हाथ है।

यहाँ कटे हुए हाथ को देखकर उत्पन्न करुण रस के अङ्गरूप में शृङ्गार रस है। अतः यहाँ अपराङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्यता है।

(ख) प्रेय : विभाव तथा अनुभाव के द्वारा निर्वेद आदि यदि प्रकट किये गये हों तथा देवता आदि में रति जहाँ अङ्ग रूप में हो तो वहाँ प्रेय अलङ्कार तथा अपराङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य होता है-

विभावेनाऽनुभावेन निर्वेदादिः स्फुटीकृतः।
देवतादौ रतिर्यत्र चाङ्गं तत्प्रेय उच्यते।।[2]

श्रीबालकृष्णभट्ट ने इसका उदाहरण भी दिया है।[3] विस्तार के भय से उसे यहाँ प्रस्तुत करना अपेक्षित नहीं है। इस अपराङ्ग व्यङ्ग्य का एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है-

कदा वृन्दारण्ये तपनतनयातीरनिकटे।
स्थितं गोपीनाथं मनसि निदधानः सशपथम्।
हरे राधानाथ त्रिभुवनविभो वेङ्कटपते।
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्।।[4]

---

१ अलङ्कारसार ५/६
२ तदेव ५/८
३ तदेव ५/७
४ तदेव ५/९

इस श्लोक में 'कदा' पद से सूचित 'चिन्ता' नामक व्यभिचारिभाव शान्तरस का अङ्ग है। अतः अपराङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य है।

(ग) ऊर्जस्वी : जहाँ अनौचित्य से रस की प्रवृत्ति हो और भाव की प्रवृत्ति अनौचित्यपूर्ण हो तो वहाँ क्रमशः रसाभास और भावाभास होते हैं परन्तु यदि ये किसी के अङ्ग रूप में स्थित हों तो इसे ऊर्जस्वी अलङ्कार कहा जाता है और ऐसे स्थलों पर अपराङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य होता है। इसे **अलङ्कारसार** में एक कारिका के द्वारा बतलाया गया है-

अनौचित्यात्प्रवृत्तो यो रसो भावश्च कथ्यते।
भावाभासो रसाभासः स यत्राङ्गं परस्य तु।।[२]

रसाभास तथा भावाभास के अङ्ग रूप में होने के उदाहरण **अलङ्कारसार** में देखे जा सकते हैं।[३]

(घ) समाहित : किसी भाव की शान्ति यदि किसी दूसरे के अङ्ग रूप में संस्थित हो तो वहाँ समाहित अलङ्कार तथा अपराङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्य होता है-

भावस्य तु प्रशाम्यन्ती ह्यवस्था गद्यते बुधैः।
भावशान्तिः परस्याङ्गं सा स्याद् यत्र समाहितम् ।।[४]

उदाहरणतया **अलङ्कारसार** में एक पद्य उद्धृत है जिसमें किसी राजा की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि राजन् ! निरन्तर तलवार के

---

१ अलङ्कारसार, [illegible], पृ. [illegible]
२ अलङ्कारसार [illegible]
३ वही [illegible]
४ वही [illegible]

कम्पन से और भ्रकुटि टेढ़ी करके गर्जन करने से आप के वैरियों का मद आप के द्वारा देखते ही क्षण भर में पता नहीं कहाँ चला गया है।[1]

यहाँ पर शत्रुओं के मद अर्थात् गर्व रूप भाव की शान्ति कही गयी है। परन्तु यह भावप्रशम (भावशान्ति) राज-विषयक रति भाव का अङ्ग हो गयी है। अतः यहाँ अपराङ्गगुणीभूत व्यङ्ग्य तथा समाहित अलङ्कार है।

(ङ) भावोदय अलङ्कार : जहाँ किसी भाव का उदय वर्णित हो और वह किसी का अङ्ग बन गया हो तो वहाँ भावोदय अलङ्कार और अपराङ्गगुणीभूतव्यङ्ग्यत्व होता है-

भावस्योद्गमवस्थायाः पराङ्गत्वं यदा भवेत् ।
तदा भावोदयो ज्ञेयो विभूषणबुभुत्सुभिः।।[2]

श्रीबालकृष्णभट्ट ने भावोदय के उदाहरण में नैषधीयचरित का यह पद्य उद्धृत किया है-

तदद्य विश्रम्य दयालुरेधि मे दिनं निनीषामि भवद्विलोकिनी।
अदर्शि पादेन विलिख्य पत्रिणा तवैव रूपेण समः स मत्प्रियः।।[3]

इस श्लोक में नल के प्रति भैमी (दयमन्ती) का औत्सुक्य भाव उदित हो रहा है। परन्तु यह भाव शृङ्गार के अङ्ग के रूप में स्थित है। अतः यहाँ भावोदय अलङ्कार है जो मध्यम काव्य गुणीभूतव्यङ्ग्य के अपराङ्ग भेद को स्पष्ट करता है।[4]

(च) भावसन्ध्यलङ्कार : जहाँ विरुद्ध भावों की सन्धि अथवा सन्धि प्रदर्शित की जाय वहाँ भावसन्धि होती है। यदि यह भावसन्धि

---

१ अखिलकरवालकम्पनैर्भ्रकुटीतर्जनगर्जनैर्मुहुः।
ददृशे नल वैरिणां मदः स गतः क्वापि तवेक्षणे क्षणात् ॥
(अलङ्कारसार ५/१८)

२ अलङ्कारसार ५/१७

३ अलङ्कारसार ५/१६

४ तदेव, पञ्चमोल्लास, पृ० ५४

किं वक्ष्यन्त्यपकल्मषाः कृतधियः स्वप्नेऽपि सा दुर्लभा।
चेतः स्वास्थ्यमुपैहि कः खलु युवा अन्योऽधरं धास्यति।।[1]

यह श्लोक **'विक्रमोर्वशीयम्'** से लिया गया है। इसमें उर्वशी को देखकर राजा पुरुरवा की उक्ति है कि कहाँ यह अनुचित कृत्य और कहाँ मेरा कुल चन्द्र वंश? क्या वह मुझे पुनः दृष्टिगोचर होगी? दोषों के शमनार्थ हमारा ज्ञान है। क्रोध में भी उसका मुख सुन्दर था। कल्मषरहित पुण्यात्मा और विद्वान् लोग मुझे क्या कहेंगे ? वह तो स्वप्न में भी दुर्लभ है। चित्त! धैर्य रखो! कौन सौभाग्यशाली युवक उसके अधर का पान करेगा ?

उपर्युक्त श्लोक में वितर्क, औत्सुक्य, मति, स्मरण, शङ्का, दैन्य, धैर्य तथा चिन्ता नामक भावों की शबलता है और वह विप्रलम्भ शृङ्गार का अङ्ग हो गयी है।[2] अतः यहाँ भावशबलता अलङ्कार है, जो अपराङ्गगुणीभूतव्यङ्ग्य है।

इस प्रकार रसवदादि अलङ्कार तथा भावोदयादि अलङ्कार अपराङ्गगुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य की सृष्टि करते हैं। **अलङ्कारसार** में भावोदय, भावसन्धि और भावशबलता को अलङ्कार माना गया है। परन्तु **काव्यप्रकाश** में ये अलङ्कार नहीं स्वीकार किये गये हैं।[3] स्वयं शिवरामकृष्ण भट्ट ने **अलङ्कारसार** में इसे बतलाया है कि आचार्य मम्मट इन्हें अलङ्कार नहीं मानते हैं जबकि **अलङ्कारसर्वस्वकार** रुय्यक ने इन्हें पृथक्तया अलङ्कार स्वीकार किया है- **भावोदयभावसन्धिभावशबलता नालङ्कार इति काव्यप्रकाशः। अप्राधान्यादेवालङ्कारत्वं दुर्वारमित्यलङ्कारसर्वस्वकारादयः।**[4]

---

१ अलङ्कारसार, ५/२१
२ तदेव पञ्चमोल्लास, पृ॰ ५४
३ एते च रसवदाद्यलङ्काराः। यद्यपि भावोदयभावसन्धिभावशबलत्वानि नालङ्कारतया उक्तानि तथापि कश्चित् ब्रूयादित्येवमुक्तम् । (काव्यप्रकाश पञ्चमोल्लास, पृ॰ २४६)
४ अलङ्कारसार, पञ्चमोल्लास, पृ॰ ५५

गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य अथवा मध्यम काव्य का रस भावादि के तात्पर्य से पर्यालोचन करने से मध्यम काव्य का पर्यवसान उत्तम काव्य में हो जाता है। उत्तम तथा मध्यम दोनों काव्यों में सङ्कर तथा संसृष्टि भी हो जाती है तथापि **'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति'** इस न्याय से कहीं किसी रूप में व्यवहृत होता है और वहीं कहीं अन्य रूप से व्यवहार में आता है।[1] किसी पद्य में गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य है तो रस आदि ध्वनि भी हो सकती है और जहाँ रस का प्रस्फुटन है वहाँ कहीं गुणीभूतव्यङ्ग्यता भी हो सकती है। परन्तु जहाँ जिसकी प्रधानता होती है वहाँ वहीं नामतः व्यवहार होता है। प्रधानता का तात्पर्य चमत्कारजनकता से है। यदि रसादि चमत्कार जनक होंगे तो रसादि ध्वनि तथा जहाँ वाच्य में चमत्कार होगा वहाँ गुणीभूतव्यङ्ग्यत्व स्वीकार किया जायेगा।

३. **वाच्यसिद्ध्यङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य** : यदि व्यङ्ग्यार्थ वाच्य अर्थ की सिद्धि में उपकारक अथवा सहायक होता है तो वहाँ वाच्यसिद्ध्यङ्गगुणीभूतव्यङ्ग्य होता है। आनन्दवर्धन ने कतिपय अलङ्कारों में व्यङ्ग्यार्थ की स्थिति मानी है। यथा आक्षेप, पर्यायोक्त, समासोक्ति तथा दीपक आदि में व्यङ्ग्यार्थ के बिना इन अलङ्कारों की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।[2] अतः ऐसे स्थलों पर वाच्यसिद्ध्यङ्गगुणीभूतव्यङ्ग्य स्वीकार किया जा सकता है। **अलङ्कारसार** में भी वाच्य की उत्पत्ति में उपकारक व्यङ्ग्य वाले स्थल पर वाच्यसिद्ध्यङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य कहा गया है **'वाच्यसिद्ध्यङ्गं वाच्यसिद्ध्यङ्गम् । यद् वाच्योत्पत्तावेवोपकारकं तदभिधीयते।'**[3]

---

1. अलङ्कारसार, पञ्चमोल्लास, पृ. ५५
2. आक्षेपसमासोक्तिपर्यायोक्तादिषु तु व्यङ्ग्यमानांशाविनाभावेनैव तत्त्वव्यवस्थानाद् गुणीभूतव्यङ्ग्यता निर्विवादैव। (ध्वन्यालोक, तृतीयोद्योत, पृ. २६१)
3. अलङ्कारसार, पञ्चमोल्लास, पृ. ५५

वाच्यसिद्ध्यङ्गगुणीभूतव्यङ्ग्य का उदाहरण अधोलिखित है-

भ्रमिमरतिमलसहृदयतां प्रलयं मूर्च्छां तमः शरीरसादम् ।
मरणञ्च जलदभुजगजं प्रसहय कुरुते विषं वियोगिनीनाम् ।।[1]

'मेघरूपी सर्प से उत्पन्न विष वियोगिनी स्त्रियों में बलपूर्वक भ्रमित्व, विषयादि में अरुचि, आलस्य, निश्चेष्टता, मूर्च्छा, अन्धकार (आँखों के आगे अंधेरा छा जाना), शरीर की क्षीणता तथा मरण उत्पन्न कर देता है।'

इस उपर्युक्त पद्य में **'जलद रूप सर्पों से उत्पन्न विष'** इस वाच्यार्थ के कथन से **'हलाहल'** रूप व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होती है। यह व्यङ्ग्यार्थ वाच्यार्थ का उपकारक है।[2] अतः वाच्यसिद्ध्यङ्गगुणीभूतव्यङ्ग्य है। यह पद्य एक वक्तृगत वाच्यसिद्ध्यङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य का उदाहरण है। भिन्न वक्तृगत वाच्यसिद्ध्यङ्ग गुणीभूतव्यङ्ग्य भी हो सकता है। आचार्य मम्मट ने इस प्रकार का उदाहरण **काव्यप्रकाश** में उपस्थापित किया है।[3] **अलङ्कारसार** में यह विभाजन दृष्टिगत नहीं होता है।

४. अस्फुट गुणीभूतव्यङ्ग्य : अस्फुट गुणीभूतव्यङ्ग्य के विषय में ध्वन्यालोककार की एक पङ्क्ति यहाँ स्मरणीय है- **यत्र प्रतीयमानस्यार्थस्य वैशद्येनाऽप्रतीतिः स नाम माभूद् ध्वनेर्विषयः।**[4] अर्थात् जहाँ प्रतीयमानार्थ की प्रतीति स्पष्टतया न हो तो वहाँ ध्वनि काव्य की स्थिति नहीं होती है। इससे ज्ञात होता है कि व्यङ्ग्यार्थ तो होता है परन्तु सहृदयों के द्वारा विशदतया उसकी अप्रतीति रहती है ऐसे स्थल पर भी गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य माना जाता है। इस काव्य में अस्फुट नामक गुणीभूतव्यङ्ग्य होता है। इसीलिए **साहित्यसुधासिन्धु** में कहा

---

१ अलङ्कारसार, ५/२४
२ तत्रैव, पञ्चमोल्लास, पृ. ५५
३ काव्यप्रकाश, पञ्चमोल्लास, पृ. २५१
४ ध्वन्यालोक (लोचनटीकायुक्त), पृ. १०८

[illegible] सहृदयों के द्वारा भी झटिति असंवेद्य [illegible]

[illegible] । [3]

[illegible] गुणीभूतव्यङ्ग्य तथा आचार्य मम्मट ने भी असुन्दर [illegible] की कोटि में रखा है।[2] **अलङ्कारसार** में [illegible] पद्य दिया गया है-

[illegible] ।

[illegible] सुखम् ।।[3]

[illegible] तथा दर्शन होने पर [illegible] आपके दर्शन होने तथा न होने दोनों [illegible] नहीं प्राप्त होता है।

[illegible] है। नायिका अपने प्रियतम से [illegible] जिससे न आप अदृष्ट रहें और न [illegible] व्यङ्ग्यार्थ यहाँ श्लिष्ट (चिपके [illegible]) है।[4] [illegible] गुणीभूतव्यङ्ग्य है। आचार्य मम्मट ने यहाँ **'[illegible]'** [illegible] **'[illegible]'** कहा है।[5] **अलङ्कारसार** में [illegible] ने यहाँ उपर्युक्त पद्य में [illegible] मत उपस्थापित किये हैं।

[illegible] उपर्युक्त पद्य में शब्दार्थ शक्ति के द्वारा [illegible] नहीं हो पा रहा है। कतिपय आचार्य कहते हैं कि [illegible] सहृदयों के द्वारा भी झटिति अप्रतीयमान है-

---

[illegible], पृ. [illegible]

[illegible] पृ. [illegible]

[illegible]

[illegible], पृ. [illegible]

[illegible], पृ. [illegible]

[illegible]

(ब) **[illegible]** : यदि वह विशेष कारण [illegible] [illegible] [illegible]

भामह अनुप्रास पद से कहते हैं कि अक्षर अनेक तथा पृथक होने पर भी समान रूप (एकरूप) होने के लिए 'विवक्षित' तथा वर्ण को अनुप्रास कहते हैं। **अक्षरेष्वनुरूपेष्वनेकधा वर्णेषु विवक्षितेषु सदृशत्वम्**[1] इस प्रकार भामह द्वारा लाटानुप्रास का विवेचन नहीं प्रस्तावित किया गया है।

६. **लाटानुप्रास पुनरुक्तवदाभास** : यदि वाक्यार्थ एवं पदार्थ दोनों की अभिन्न प्रतीति हो रही हो वहाँ पुनरुक्त प्रतीयमान होता है। **साहित्यदर्पण** में आचार्यवर ने कहा है कि कहीं-कहीं पदार्थ और वाक्यार्थ की अभिन्नप्रतीति होती है। **पदार्थैकान्वयेऽप्यन्यपदार्थस्यापि क्वचित् प्रतीतिः**[2] की अनुवृत्ति से पुनरुक्तवदाभास का उदाहरण समझाया गया है -

अद्यापि निद्रावशगते पतिदेवे।
जागर्त्यसकला रात्रिरन्यथा दुर्लभा सखे।।[3]

इस पद का तात्पर्य है कि अद्यापि के अन्वय करने का यहाँ अर्थ के ही वाक्यार्थ है, अन्वय अलग भिन्न पदानुसार अन्वय है अर्थात्।

पदार्थैकान्वय स्थल में अनुप्रास अनुप्रास होता है। पदार्थ अन्वित करके अन्वय वाक्यार्थ के पास पदानुसार के द्वारा होता है। अन्वय होता है। यहाँ 'पदानुसार वृत्तियों के समान ही समास स्थल पुनः का स्थल का होने पर वाक्यार्थ है तथा अन्वय का प्रयोग भी

---

१ भामहालङ्कार, सम्पादकीयम्, पृ. ५६
२ साहित्यदर्पण (चौखम्बासंस्करण), पृ. ६२५
३ साहित्यदर्पण, १०/६

विवाद-समाधान करने व्यवस्थापक न्यायालयों के दोनों ही व्यवस्थापिका न्यायालयों होने से पुनर्विलोकन पुनर्विलोकनाधिकार है।[1]

४. **व्यवस्थापिका पुनर्विलोकनाधिकार** : संघ के द्वारा नहीं व्यवस्थापकों की स्थापित हो और यह व्यवस्थापकों व्यवस्थापकों के दोनों ही अन्य से नहीं व्यवस्थापिका पुनर्विलोकनाधिकार व्यवस्थापिका होता है। व्यवस्थापिका व्यवस्थापकीय के भी संघ के द्वारा पुनर्विलोकनाधिकार की स्थिति व्यवस्थापकों है। इसके अनुसार नहीं संघ के द्वारा अधिनियम की संवैधानिक दृष्टिकोण होता है, यदि नहीं अधिनियम (व्यवस्थापकों) दोनों ही से यह पुनर्विलोकनाधिकार व्यवस्थापिका के अन्तर के अन्तर में अन्तर महत्व व्यवस्थापिका है।

अमेरिकाराष्ट्रपति: व्यवस्थापिका पर विशेष परिपृच्छाएं:

एवं व्यवस्थापिका पुनर्विलोकनाधिकार अन्तर्निहितसंविधान:[2]

संघ के व्यवस्थापिका पर व्यवस्थापिका में होने से नहीं व्यवस्थापिका के व्यवस्थापिका संघ का व्यवस्थापिका होता है।[3] **अमेरिकाराष्ट्रपति** में स्थिति व्यवस्थापिका के पद का व्यवस्थापिका व्यवस्थापिका पुनर्विलोकनाधिकार किया गया है कि नहीं संघ के द्वारा दोनों नहीं व्यवस्थापिका का दिया व्यवस्थापिका है नहीं पुनर्विलोकनाधिकार होता है और नहीं विवाद में नहीं का व्यवस्थापिका होता है नहीं व्यवस्थापिका होता है: **संघ व्यवस्थापिका पुनर्विलोकनाधिकार व्यवस्थापिका पुनर्विलोकनाधिकार संघ व्यवस्थापिका संघ

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद् दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।
सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन।।[1]

क्या मैं युद्ध में क्रोध से सौ कौरवों का नाश नहीं करूंगा? क्या मैं दुःशासन के वक्षःस्थल से निकले रक्त का पान नहीं करूंगा? गदा से मैं दुर्योधन की दोनों जङ्घाओं को नहीं चूर्ण करूंगा? आप के राजा (युधिष्ठिर) भले ही किसी शर्त पर सन्धि कर लें।

यहाँ क्रोध से आक्रान्त भीम की उक्ति में 'मथ्नामि' यह व्यङ्ग्य निषेध रूप में वाच्य है। काकु के बिना व्यङ्ग्यार्थ की अबाधित प्रतीति नहीं हो पा रही है। उसके आक्षेप से तथा दोनों अर्थों की प्रतीति एक साथ होने से व्यङ्ग्यार्थ की गुणीभूतता है।[2] काक्वाक्षिप्तगुणीभूतव्यङ्ग्य वाच्यसिद्ध्यङ्ग से भिन्न होता है। वाच्यसिद्ध्यङ्ग पदार्थ की सिद्धि करता है, जबकि काक्वाक्षिप्त गुणीभूतव्यङ्ग्य सिद्धरूप वाच्यार्थ के बाध को दूर करता है। काकु की ही वाच्यसिद्ध्यङ्गता होती है, काकु के द्वारा व्यङ्ग्य की वाच्यसिद्ध्यङ्गता नहीं होती है। उत्तमकाव्य (ध्वनि) में काकु की व्यञ्जकता होने पर व्यङ्ग्य की वाच्यसिद्धिसम्बन्धिता नहीं होती है। इस प्रकार यहाँ आने वाले दोष अतिव्याप्ति का वारण हो जाता है।[3]

'मथ्नामि कौरवशतम्' पद्य में कतिपय आचार्यों ने विपरीत लक्षणा का प्रसङ्ग उठाया है। परन्तु यहाँ विपरीत लक्षणा का अवकाश ही नहीं है। यहाँ मुख्यार्थबाधादि विघ्न नहीं है। केवल यहाँ कण्ठ का काकु दीन स्वर, तार, गद्गद तथा साकाङ्क्ष हो जाता है और अर्थ की प्रतीति होने लगती है। विपरीत लक्षणा तो ऐसे स्थल पर होती है जहाँ काकु आदि के द्वारा अर्थ की प्रतीति सम्भव न हो और मुख्यार्थ में बाधा

---

१. अलङ्कारसार ५/२८
२. अलङ्कारसार, पञ्चमोल्लास, पृ. ५६
३. वही, पञ्चमोल्लास, पृ. ५६

आ रही हो।[१] इस प्रकार काकु के द्वारा उपस्थापित व्यङ्ग्यार्थ यदि गौण हो तो काक्वाक्षिप्त गुणीभूतव्यङ्ग्यता और यदि प्रधान हो तो आर्थी व्यञ्जना के द्वारा ध्वनिकाव्य होता है। चमत्कारपरत्व ही प्रधानाप्रधान का निर्णायक तत्त्व हो सकता है।

८. असुन्दर गुणीभूतव्यङ्ग्य : जब व्यङ्ग्यार्थ का चमत्कार सुन्दर न हो, मन्दप्रभ हो तो ऐसे स्थल पर प्रतीयमानार्थ गौण होकर असुन्दर नामक गुणीभूतव्यङ्ग्य की प्रतीति कराता है। इस सन्दर्भ में **ध्वन्यालोक** में भी सङ्केत किया गया है-

यत्र प्रतीयमानाऽर्थः प्रम्लिष्टत्वेन भासते।[२]

आचार्य मम्मट ने भी व्यङ्ग्यार्थ वाच्यार्थ से कम सुन्दर हो तो उसे गुणीभूतव्यङ्ग्य कहा जाता है, ऐसा लिखा है।[३] **अलङ्कारसार** में असुन्दर गुणीभूतव्यङ्ग्य का उदाहरण अधोलिखित पद्य दिया गया है-

आकर्णयन्त्या वाणीरकुञ्जोडीनद्विजारवम् ।
सीदन्त्यङ्गानि कामुक्याः कुर्वन्त्याः कर्म वेश्मनि।।[४]

वेंत की लता कुञ्ज में उड़ते हुए पक्षियों के कोलाहल को सुनती हुई घर में कार्य करने वाली कामुकी (चञ्चल युवती) के अङ्ग व्याकुल हो रहे हैं।

यहाँ कोई नायक अपनी प्रेमिका को वेतस लता कुञ्ज में मिलने का सङ्केत देकर समयानुसार वहाँ पहुँच जाता है। पक्षियों का उड़ना और कलरव सुनकर नायिका उक्त तथ्य का आकलन कर लेती है। परन्तु वह गृहकार्य में व्यस्त होने के कारण अभी वहाँ नहीं गयी, अतएव उसके अङ्ग व्याकुल हो रहे हैं।

---

१ ध्वन्यालोक लोचनटीका तृतीयोद्योत, पृ. २६६
२ ध्वन्यालोक २/३२
३ काव्यप्रकाश, पञ्चमोल्लास, पृ. २५६
४ अलङ्कारसार ५/२९